ध्यान दें:

9

आगमखण्ड

वेदान्तशास्त्र में छः प्रमाण होते हैं। वे हैं प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान शब्द, अर्थापत्ति तथा अनुपलब्धि। प्रमा पाँच प्रकार की होती है- प्रत्यक्षप्रमा, अनुमितिप्रमा, उपमितिप्रमा, शाब्दबोधप्रमा तथा अर्थापत्ति प्रमा। इनमें से प्रत्यक्षप्रमाण तथा प्रत्यक्षप्रमा, अनुमान प्रमाण तथा अनुमिति प्रमा, उपमानप्रमाण तथा उपमिति प्रमा, इन सब का पूर्व पाठ में विस्तार से प्रतिपादन किया जा चुका है। इस पाठ में शब्द प्रमाण तथा शाब्धबोध प्रमा प्रस्तुत की जा रही है। शब्द प्रमाण का ही अपर नाम आगम प्रमाण है 'आ सम्यक् गम्यते ज्ञायते अर्थः अनेन इति आगमो वाक्य विशेषः इति आगमपदव्युत्पत्तिः' अर्थात् जिसके द्वारा सम्यक् प्रकार से अर्थ जाना जाए वह आगम विशेष होता है। यह आगम पद की व्युत्पत्ति है। इसलिए व्याख्यान काल में कहीं पर शब्दप्रमाण तथा कहीं पर आगम प्रमाण इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसलिए वहाँ सन्देह नहीं करना चाहिए। वहाँ पर शब्द प्रमाण के मुख्य प्रतिपाद्य विषय होते हैं शब्द प्रमाण, शक्तिस्वरूप, लक्षणास्वरूप तथा शब्द जन्यबोध में सहकारी। उनका यहाँ पर प्रस्तुतिकरण कर रहे हैं।

उद्देश्य

इसा पाठ को पढ़कर के आप सक्षम होंगे;

- अद्वैतवेदान्त के मत में शब्द प्रमाण को समझ पाने में;
- शब्दप्रमा क्या है यह जान पाने में;
- वृत्ति को जानकर के शक्ति के लक्षण तथा उसके भेदों को जानने में;
- लक्षणा के बीज को समझ पाने में;
- शाब्दबोध में क्या सहकारी होते हैं, इनको जान पाने में;
- वेदान्तमत के द्वारा वेद के पौरुषयत्व तथा अपौरुषयत्व के विचार को समझ सकेंगे;

9.1) शब्दप्रमा का लक्षण

शब्द प्रमाण इसका अर्थ होता है शब्द प्रमा का करण। तो शब्द किस प्रमा का करण होता है क्योंकि वेदान्त शास्त्र में तो प्रत्यक्षप्रमा, अनुमितिप्रमा, उपमितिप्रमा, शाब्दबोधप्रमा तथा अर्थापत्तिप्रमा इस

ध्यान दें:

प्रकार से पाँच प्रमा बताई गयी हैं। तो कहते हैं कि इसमें जो शाब्दबोध प्रमा है उसका करण ही शब्दप्रमा होती है तथा वह शब्दप्रमा का प्रतिफलरूप होता हैं। इस प्रकार शब्दप्रमा का सामान्य लक्षण 'शाब्दबोध करणत्वं शब्दप्रमाणत्वम्' कह सकते हैं। इस लक्षण के समन्वय में पूर्वशाब्दबोध क्या होता है तो कहते हैं कि शब्द से उत्पन्न होने वाला बोध ही शब्द बोध होता है। वह शाब्दबोध ही शब्दप्रमा, शब्दीप्रमा अथवा शाब्दबोध कहलाता है। इस प्रकार से शाब्दबोधरूप प्रमा का करण ही शब्दप्रमाण होता है। तो वहाँ क्या शब्दमात्र ही शब्दप्रमा का करण होता है अथवा कोई विशिष्ट शब्द होता है, इस प्रकार से जिज्ञासा करने पर प्रमाणभूत शब्द का लक्षण होता है- यस्य वाक्यस्य तात्पर्यविषयीभूतसंसर्गों मानान्तरेण न बाध्यते तद् वाक्यं प्रमाणम् (जिस वाक्य का तात्पर्यविषयीभूत संसर्ग मानान्तर से बाधित नहीं होता है वह वाक्य प्रमाण कहलाता है)

यहाँ पर वाक्य का अन्वय तात्पर्य में है। तात्पर्य तत्प्रतीतिजननयोग्यत्व होता है जिसका आगे सविस्तार वर्णन किया जा रहा है। तात्पर्य वाक्यनिष्ठ होता है। मानान्तर से तात्पर्य वेदान्त इतर प्रमाण है। तात्पर्य विषयी भूत ही संसर्ग विशेषण होता है। संसर्गपद का पदार्थान्वय अर्थ होता है। संसर्गपद का वाक्यार्थ ही यहाँ पर अर्थ है। वाक्य में जैसे पदजन्यपदार्थ भासित होते हैं तथा पद में उपस्थित अर्थों में परस्पर संसर्ग भी भासित होता है, वह आकाङ्क्षा के द्वारा भासित होता है। इस प्रकार से संसर्ग भी वाक्यार्थ के अन्तर्गत ही होता है। इसलिए उपरोक्त लक्षण में संसर्गपदवाक्यार्थपरक है। न बाध्यते इसका अर्थ है कि बाधक प्रमा के द्वारा विषय नहीं होता है।

इस प्रकार से वेदान्तेतर प्रमाण के द्वारा अबाधित कुछ वाक्य निष्ठ जो तात्पर्य है। उसका विषयीभूत वाक्यार्थ (संसर्ग) जिस वाक्य का होता है वह वाक्य आगम प्रमाण इस अर्थ में होता है। अर्थात् अर्थविषयक बोध को जो वाक्य जन्म देता है। वह वाक्य आगमप्रमाण कहलाता है।

उसके द्वारा वेदान्तेतरप्रमाणाधित-तात्पर्यविषयीभूतवाक्यार्थविषयकप्रतीतिजननयोग्यत्वम् आगमप्रमाण का लक्षण फलित होता है।

अब नील घट यहाँ पर इसका समन्वय प्रस्तुत करते हैं। वैसे नील घट इस वाक्य का अर्थ होता है नील से अभिन्न घट। उस से तात्पर्य विषयभूत वाक्यार्थ नील अभिन्न घट होता है। यह अर्थ किसी भी वेदान्त इतर प्रमाण से बाधित नहीं है। इसलिए यह अर्थ मानान्तर से भी अबाधित है, तथा यह मानान्तर अबाधित तात्पर्यविषयीभूत वाक्यार्थ भी है। तद्विषयकप्रतीति का जननयोग्य ही नील घट यह वाक्य होता है। इसलिए यह प्रमाण है।

वाक्यलक्षण का पदकृत्य

यहाँ पर यह विचार किया जाता है कि यदि वाक्यत्व इसका शब्दप्रमाणत्व लक्षण करते हैं तो 'जल के द्वारा सींचता है' इत्यादि में भी वाक्यत्व के सत्व होने से वहाँ लक्षण जाता है। वह जरूरी भी है लेकिन दस अनार,छः पुए इत्यादि निरर्थक पदसमुदायों में भी वाक्यत्व के सत्व के द्वारा वहाँ भी लक्षण चला जाता है।लेकिन उनका प्रमाण तो इष्ट नहीं है। इसलिए लक्षण के वहाँ जाने से वहाँ अति व्याप्ति होती है। उसके वारण के लिए तात्पर्यविषयीभूत वाक्यार्थविषयबोधकजनकत्वं इस वाक्य में विशेषण दिया गया है। वहाँ पर तात्पर्यविषयभूतवाक्यार्थविषयबोधजनकत्व शब्दप्रमाणत्व यह लक्षण होता है। जिससे उसकी निरर्थक वाक्यों में अतिव्याप्ति नहीं होती है, उस प्रकार के वाक्यों के द्वारा किसी भी बोध के अजनन से तात्पर्यविषयीभूतार्थ विषयबोधकजनकत्व के वहाँ पर असम्भव होने से (अतिव्याप्ति नहीं होती है) लेकिन तात्पर्यविषयीभूतवाक्यार्थविषयकबोधकजनकत्व शब्दप्रमाणत्व कहा गया है तो भ्रमात्मक तात्पर्य विषयी भूतबोधजनक में शाक्य आदि वाक्य में अतिव्याप्ति होती है। इसलिए वहाँ पर दोष के निवारण

ध्यान दें:

के लिए मानान्तरबाधिततात्पर्यविषयीभूतबोधजनकवाक्यत्व शब्दप्रमाणत्व यह लक्षण किया गया है।

निश्चित रूप से घट को लाओ, स्वर्ग की कामना के लिए यज्ञ करो, इत्यादि लौकिक तथा वैदिक वाक्यों की अप्रमाण्यापत्ति होती है। किस प्रकार से होती है तब कहते हैं नेह नानास्ति किञ्चन इति अतोऽन्यदार्तमित्यादिश्रुतय:। उसका अर्थ है ब्रह्मभिन्न सब मिथ्या है अर्थात् बाधित है। इसलिए तत्तद्वाक्यतात्पर्यविषयीभूत तत्ततत्सर्ग के बाधित्व होते है। तब यहाँ पर कहा गया है कि यहाँ पर मानान्तरपद से वेदान्तेतरप्रमाण के ग्रहण से कोई दोष नहीं होता है। भले ही इन वाक्यों का संसर्ग बाधित है फिर भी वह वेदान्त प्रमाण से बाधित है न की किसी और भिन्न प्रमाण से।

9.2) वृत्ति

शब्दजन्य बोध के प्रति शब्द मात्र ही कारण होता है, लेकिन शब्दनिष्ठ वृत्ति ज्ञान भी शब्दजन्य बोध के प्रति कारण होता है यह सभी प्रकार से सिद्ध है। क्योंकि शब्द श्रवण मात्र से बोध नहीं होता है। लेकिन उसी प्रकार के ही शब्द के द्वारा बोध उत्पन्न होता है जिसकी वृत्ति श्रोता जानते हैं। इसलिए शाब्दबोध में कारणीभूत वृत्तिपदार्थ क्या है यह जिज्ञासा होती है। तब कहते हैं पद के अर्थ के साथ जो बोधानुकूल सम्बन्ध होता है वह ही बुद्धिमान लोगों के द्वारा वृत्ति कही गयी है। इसलिए शाब्दबोधानुकूल पदपदार्थसम्बन्ध इस प्रकार का शास्त्रों में वृत्तिलक्षण प्रतिपादित किया गया है। जैस गङ्गा इस पद का जलप्रवाह रूप इस अर्थ के साथ कोई सम्बन्ध है जिसके द्वारा गङ्गापद को जो वृत्ति जानता है उसको गंगा पद को सुनकर के उसके विषय में बोध उत्पन्न होता है। वह सम्बन्ध ही वृत्ति कहलाता है। इसी प्रकार सभी पदों का स्वार्थ के साथ अर्थविषयक बोधानुकूल कोई सम्बन्ध होता है, वह सम्बन्ध ही वृत्ति इस प्रकार से समझा जाता है। वह वृत्ति वेदान्त के मत में दो प्रकार की होती है। तथा शक्तिलक्षणा होती है। यहाँ पर क्रम से दोनों के भेद के साथ स्वरूप प्रतिपादित किये जा रहे हैं।

एक ही शब्द की वृत्ति दो प्रकार की होने के कारण शब्द के अर्थ भी दो प्रकार के होते है।

9.2.1) शक्ति

पदार्थों में पायी जाने वाली मुख्यवृत्ति शक्ति कहलाती है। अर्थात् पदों के अर्थों में जो मुख्यवृत्ति होती है वह ही शक्ति इस प्रकार से कही जाती है। जैसे घट पद की पृथु बुध्न उदर आदि आकृति विशिष्ट वस्तु विशेष में वृत्ति होती है। शक्ति तथा तत्तद् पद जन्य पदार्थाज्ञानरूप कार्य अनुमेय कहलता है।

नदी इस अनुपूर्वी ज्ञान में जिस अर्थ का बोध उत्पन्न होता है तथा दीन इस पद को सुननें में भिन्न अर्थ का बोध होता है। भले ही वर्ण तो समान ही है लेकिन उनमें क्रम भेद है। इस प्रकार नदी इस पद से जलप्रवाहरूप अर्थ की उपस्थिति में जो वृत्ति सहकारिणी होती है उससे भिन्न वृत्ति ही दीन पद के अर्थ की उपस्थिति में सहकारिणी होती है। इस प्रकार से यह सिद्ध होता है की हर पद में वृत्ति भिन्न भिन्न होती है। तथा वृत्ति भेद के द्वारा नियामक अथवा निरूपक अनुपूर्वी ही होता है। वृत्ति जिस अर्थ को स्मरण करवाती अथवा उपस्थापित करती है। वह अर्थ ही वृत्तिविषय होती है। इसलिए वृत्ति निरूपकत्वसम्बन्ध से पद में रुकती है। तथा विषयता सम्बन्ध से वह अर्थ में रुकती है। वृत्ति निरूपकत्व सम्बन्ध से जहाँ रूकती है वह शक्त कहलता है। तथा वृत्ति विषयता सम्बन्ध से जहाँ रुकती है वह शक्य कहलाता है इसलिए पद शक्त तथा अर्थ शक्य होता है। शक्त इसका शक्तिमत अर्थ होता है। ज्ञान के उत्पन्न होने में शक्ति तथा सामर्थ्य अर्थ होता है। वह भी (स्वशक्यार्थविषयक) ज्ञानजननसमर्थ पद होता है अर्थ स्मृति अनुकूल पदत दर्थसम्बन्ध शक्ति होती है।

ध्यान दें:

यह भाव

कोई शब्द स्वनिष्ठवृत्ति के द्वारा कुछ भी अर्थ उपस्थापित करता है। वृत्ति वेदान्तशास्त्र में दो प्रकार की होती है। एक शक्ति तथा दूसरी लक्षणा। वहाँ पर शक्ति क्या है? तब कहते है जो मुख्य वृत्ति होती है वह ही शक्ति होती है इस प्रकार से समझना चाहिए। यहाँ पर मुख्यत्व क्या है तो कहते हैं जो वृत्ति अन्तर तथा निरपेक्ष होती है वह ही मुख्य होती है। जैसे गङ्गा में घोष है इत्यादि में गङ्गा शब्द की एक ही वृत्ति जलप्रवाह इस प्रकार का अर्थ होता है। अपरा वृत्ति तट यह अर्थ होता है। वहाँ जिस वृत्ति के द्वारा जलप्रवाह की उपस्थिति होती है वह ही शक्ति होती है। कारण जलप्रवाहरूप रुप अर्थ की उपस्थापिका जो वृत्ति होती है वह अन्य वृत्ति के विना ही जलप्रवाहरूप वृत्ति का उपस्थापन करती है। इसलिए जलप्रवाहरूप अर्थ की उपस्थापिका जो वृत्ति होती है वह ही शक्ति होती है। तटरूप के अर्थ की उपस्थापिका जो वृत्ति होती है वह तो शक्ति नहीं होती है। क्योंकि जो वृत्ति तट रूप अर्थ को उपस्थापित करती है वह एक प्रकार से जलप्रवाहरूप अर्थ के ज्ञानान्तर ही तटादि अर्थ का भी उपस्थापन करती है। इसलिए वह वृत्ति अन्तर उपस्थित निरपेक्ष नहीं होती है, अतः वह शक्त नहीं होती है। यहाँ यह भाव है। अथवा प्रत्येक शब्द के दो भाव होते हैं। मुख्य तथा अमुख्य। वहाँ पर मुख्य क्या हैं तथा अमुख्य क्या है। तो कहते है कि जिसके द्वारा सभी लोग जान सके वह अर्थ मुख्य है तथा जिसके द्वारा केवल विद्वान लोग ही जान सके वह अर्थ अमुख्य है। जैसे गङ्गा शब्द का यह एक अर्थ है तथा तट यह अपर अर्थ है। इसमें जल प्रवाह रूप अर्थ मुख्य है, क्योंकि वह ही सभी लोगों के द्वारा जाना जा सकता है तथा तट रूपार्थ अमुख्य है कारण क्योंकि सभी लोग नहीं जानते हैं कि गङ्गा पद का यह अर्थ भी है केवल विद्वान लोग ही जानते है। इस प्रकार मुख्य अर्थ जो वृत्ति उपस्थापित करता है, वह मुख्य वृत्ति होती है तथा जो मुख्य वृत्ति होती है शक्ति इस प्रकार से समझी जाती है। इसलिए जल प्रवाह की उपस्थापिका जो वृत्ति है वह शक्ति रूप में आ गई है।

शक्ति जाति रूप में तथा व्यक्ति रूप में होती है।

वहाँ शब्दों में मुख्यार्थ निरूपित वृत्ति रुकती है। उसका नाम ही शक्ति होता है। अब वह शक्ति किस अर्थ के द्वारा निरूपित होती है, इस प्रकार की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। अर्थात् शक्ति के द्वारा कौन-सा अर्थ उपस्थापित किया जाता है? अथवा कौन-सा अर्थ वाच्य होता है? यह ही शक्ति किसमें रूकती है तथा किस वाक्य के द्वारा प्रकट होती है। तो वहाँ इस प्रश्न के उत्तर के विषय में शास्त्रज्ञों में बहुत प्रकार के मतभेद होते हैं। कोई कहता है की वह जाति में ही रुकती है। अन्य कुछ कहते हैं कि वह व्यक्ति में रुकती है। अन्य कुछ कहते है कि वह जाति विशिष्ट व्यक्ति में रुकती है। तब कहते हैं कि इन पक्षों में वेदान्त सम्मत पक्ष कौन-सा है? तब उत्तर देते हुए कहते है कि शक्ति जाति में ही रुकती है। क्योंकि व्यक्ति में शक्ति स्वीकार करने पर व्यक्तियों के आनन्त्य से गौरव होता है, इस प्रकार से समझना चाहिए। व्यक्तिभान तो आक्षेप से लक्षणा के द्वारा ही होता है।

9.2.2) लक्षणा

स्वबोध्य सम्बन्ध लक्षणा कहलाता है। यह द्वितीया वृत्ति होती है। इसका अपर नाम अमुख्य वृत्ति होता है। इसे जघन्या वृत्ति भी कहते हैं। वेदान्तमत में स्वोध्य सम्बन्ध लक्षण होता है। लक्षण समन्वय काल में जिस पद की लक्षणा इष्ट होती है उस पद को स्वपद से ग्रहण करना चाहिए। जैसे गङ्गा में घोष है यहाँ पर समन्वय प्रस्तुत होता है। वैसे कहने पर गङ्गापद की तट में लक्षणा इष्ट होती है। अतः यहाँ पर स्वं गङ्गा पद होता है। उसका बोध्य अर्थ जलप्रवाहरूप होता है। उसका तट के साथ सामीप्य सम्बन्ध होता है अतः प्रकृत स्वबोध्यसम्बन्ध सामीप्य सम्बन्ध होता है। वह ही लक्षणा वृत्ति होती है। इस लक्षणा

ध्यान दें:

वृत्ति के द्वारा ही गङ्गाशब्द तटरूप अर्थ का उपस्थापन करता है। उसके द्वारा गङ्गायां घोषः इस वाक्य से तट वृत्ति रूप बोध ही होता है। इसी प्रकार गंभीर नदी में घोष है (गहरी नदी में कुटीया है) इत्यादि में भी गंभीर पद से गभीरार्थ की तथा नदी पद से नद्यर्थक की उपस्थिति होती है। गंभीर पद का नदी पदार्थ के साथ अभेदान्वय होता है। उसके द्वारा गंभीर भिन्न नदी यह बोध तथा गंभीर नदी में यह बोध दोनों पदों से होता है। लेकिन तदर्थ घोष के साथ तात्पर्य अनुपपत्ति होती है। उसके कारण यहाँ पर लक्षणावृत्ति का आश्रय लिया जाता है। जिससे गंभीर नदी में यह अर्थ होता है। उससे बोध्य अर्थ गंभीर भिन्न नदी इस प्रकार के आकार वाला अर्थ होता है, उसके तट से समीप वाला अर्थ लिया जाता है। इसलिए स्वबोध्यसामीप्यसम्बन्धरूपलक्षणावृत्ति के द्वारा गहरी नदी ये दोनों पद तटार्थक के उपस्थापक होते है। उससे गहरी नदी में कुटिया इस वाक्य से गहरी नदी से भिन्न तट के पास कुटिया इस प्रकार का अर्थ होता है।

लक्षणा बीज

लक्षणा वृत्ति के द्वारा सभी जगह अर्थ का बोध नहीं होता है। लेकिन कुछ स्थलों में लक्षणा का बोध उत्पन्न होता है। उस लक्षणा के बीज क्या हैं इस प्रकार के कुछ प्रश्न उत्पन्न होते हैं। वहाँ कुछ तो अन्वायानुपपत्ति लक्षणा का बीज है ऐसा कहते हैं। अन्वय अनुपत्ति यहाँ पर अन्वय का सम्बन्ध अर्थ सम्बन्ध होता है तथा अनुपपत्ति शब्द का अर्थ बाध होता है, उससे अन्वय अनुपपत्ति शब्द का अर्थ सम्बन्ध बाध होता है। उसके द्वारा यह निष्कर्ष निकलता है की लक्षणा का सम्बन्ध बाध बीज है। जैसे गङ्गा में घोष (कुटिया) इस प्रकार से किसी ने कहा। इस वाक्य में गङ्गापद अधिकरण बोधक है तथा घोष पद आधेय बोधक है। वहाँ गङ्गापद का समर्थ अर्थ जलप्रवाह होता है तथा अधिकरण सप्तमी का शक्य अर्थ वृतित्व होता है। घोष इसका अर्थ गृह समुदाय होता है। उससे इस वाक्य का जल प्रवाह वृत्ति गृह समुदाय अर्थ होता है। इस अर्थ के द्वारा जल प्रवाह तथा घोष के बीच में आधार तथा आधेय सम्बन्ध फलित होता है। लेकिन जल प्रवाह तथा घोष के मध्य आधार तथा आधेय भाव सम्बन्ध नहीं हो सकता है। उससे प्रकृत के सम्बन्ध में बाध होता है। अतः सम्बन्धबाध को ही लक्षणा का बीज करके अन्वयबाध के परिहार के लिए प्रकृतगङ्गा पद में लक्षणा की जाती है। उसके द्वारा स्वबोध्य सम्बन्ध रूप लक्षणा वृत्ति के द्वारा गङ्गापद से तट की उपस्थिति होती है। उसके द्वारा तटवृत्ति गृहसमुदाय का बोध गङ्गायां घोषः इस वाक्य के द्वारा होता है। इस प्रकार से अन्य जगह भी होता है। इस प्रकार से लक्षणा में बीज अन्वय अनुपपत्ति सिद्ध होता है। इसलिए जहाँ पर अन्वय की अनुपपत्ति हो वहाँ पर लक्षणा करनी चाहिए।

कुछ लोग तात्पर्य अनुपपत्ति को लक्षणा में बीज मानते हैं। तात्पर्य अनुपपत्ति इसका अर्थ है तात्पर्य बोध। तात्पर्य अर्थात् वक्ता की इच्छा विशेष होती है। वहाँ पर कुछ लोग कहते है कि वक्ता की इच्छा का बाध ही लक्षणा का बीज होता है।

जैसे किसी वक्ता ने तटवृत्ति कुटिया को समझाने के लिए गङ्गा में घोष है, यह वाक्य कहा। यहाँ पर गङ्गा पद का शक्य अर्थ होता है। जल प्रवाह और अधिकरण सप्तमी से शक्य अर्थ है वृतित्व। घोष इसका अर्थ है गृह समुदाय। इस प्रकार से इस वाक्य का श्रोता जल प्रवाह वृत्ति गृह समुदाय इस बोध का अनुभव करता है। तब वक्ता के तात्पर्य का बोध होता है। कारण यह की वक्ता ने तटवृत्ति घोष वाले इस तात्पर्य से गङ्गा में घोष है यह कहा। उससे शक्य अर्थ को लेकर जल प्रवाह वृत्तिघोष इस प्रकार का अर्थ करने से तात्पर्य का बाध होता है। इसलिए तात्पर्यबाधरूप लक्षणा के बीज के विद्यामानत्व से तात्पर्यबाध के परिहार के लिए प्रकृतगङ्गापद में लक्षणा की जाती है। उससे स्वबोध्य सम्बन्ध रूप लक्षणा वृत्ति के द्वारा गङ्गा पद से तट की उपस्थिति होती है। उस के द्वारा तटवृत्तिगृहसमुदाय इसका बोध गङ्गा में घोष है इस वाक्य से होता है। इस प्रकार दूसरी जगह भी जानना चाहिए। इस प्रकार से

ध्यान दें:

तात्पर्य अनुपपत्ति लक्षणा में बीज सिद्ध होता है। उसके बाद जहाँ तात्पर्य की अनुपपत्ति होती है वहाँ लक्षणा करनी चाहिए।

यहाँ सिद्धान्त पक्ष

लक्षणा में अन्वय की अनुपपत्ति होने से बीज भी एक मत होता है। तात्पर्य अनुपपत्ति इसी का ही अपर नाम है। इस प्रकार से दोनों मतों के विद्यमान होने पर कौन सा युक्त है, यह प्रश्न उत्पन्न होता है। अत: शास्त्रकारों ने इसके निराकरण के लिए कहा है कि लक्षणा में तात्पर्य अनुपपत्ति ही बीज है न की अन्वय अनुपपत्ति। वही तत्व प्रकृत में सकारण प्रस्तुत किया जाता है। तब कहते हैं की यदि लक्षणा में अन्वय अनुपपत्ति इस प्रकार से बीज को स्वीकार किया जाए तो गङ्गा में घोष है इत्यादि में लक्षणा के असम्भव होने से भी कौओं से दधि की रक्षा करो, यहाँ पर लक्षणा नहीं होनी चाहिए। कारण यह है कि गङ्गा में घोष है इत्यादि में जिस प्रकार से अन्वय अनुपत्ति होती है वैसे कौओं से दधि बचाओ, यहाँ पर अन्वय अनुपत्ति नहीं है। क्योंकि इस वाक्य का अर्थ है काक रूपी अपादान, दधिकर्मक प्रेरणाविषयीभूत रक्षण। इससे किसी भी पदार्थ का किसी भी पदार्थ के साथ सम्बन्ध का बाध नहीं है। उससे कहते हैं कि यहाँ लक्षणा नहीं होनी चाहिए। लेकिन प्रकृत में लक्षणा इष्ट है। क्योकि केवल कौओं से दधि को बचाना ही इष्ट नहीं था अपितु सभी दधिनाशक प्राणियों से दधि की रक्षा इष्ट थी। इस प्रकार से यहाँ अन्वय की अनुपपत्ति होती है।यहाँ पर यह ही इष्ट थी। इस प्रकार से अन्वय अनुपपत्ति लक्षणा में इस प्रकार से बीज को स्वीकार करने पर प्रकृत लक्षणा नहीं होनी चाहिए । इसलिए लक्षणा में अन्वय अनुपपत्ति बीज नहीं है लेकिन तात्पर्य अनुपत्ति ही बीज है। उस से कौओं से दही की रक्षा करो यहाँ पर शक्य अर्थ को लेकर बोध स्वीकार करने पर तात्पर्य अनुपपत्ति होती है। उससे यहाँ पर काक पद की दध्युपघात में लक्षणा की जाति है। उसके द्वारा प्रकृत वाक्य की दधि के उपघातकों से दही की रक्षा करो यह बोध होता है।

9.2.3) लक्षण के भेद

लक्षणा का दो प्रकार से विभाजन किया जाता है। पहला प्रकार केवल लक्षित भेद है। तथा दूसरा 1. जहत् 2. अजहत् 3. जहत्- अजहत्, इस प्रकार से दूसरे भेद में लक्षणा तीन प्रकार की होती है।

केवल लक्षणा

शक्य के साक्षात् सम्बन्ध वाली लक्षणा केवल लक्षणा कहलाती है अर्थात् शक्य के साक्षात्सम्बन्ध रूपी जो लक्षणा होती है वह केवल लक्षणा कही जाती है। जैसे गङ्गा में घोष है, यहाँ पर गङ्गा के तीर में लक्षणा है। वह लक्षणा केवल लक्षणा इस प्रकार से कही जाती है। जैसे स्वं गङ्गा पद होता है उसका शक्य जलप्रवाह होता है उस जल प्रवाह का तट के साथ सामीप्य सम्बन्ध होता है। इसलिए यहाँ पर जो सामीप्यसम्बन्ध रूपी जो लक्षणा होती है वह केवल लक्षणा कहलाती है। इस प्रकार अन्य जगह भी समझना चाहिए।

लक्षित लक्षणा

स्वबोध्य तथा परम्परा सम्बन्ध लक्षित लक्षणा का होता है। जैस भौंरा रोता है। यहाँ पर लक्षित लक्षणा है। यहाँ पर लक्षण का समन्वय प्रस्तुत किया गया है, जिस प्रकार से जिस पद की लक्षणा करनी होती है उस पद को स्वपद के रूप में ग्रहण करते हैं। जैसे प्रकृत द्विरेफ पद की मधुकर में लक्षणा इष्ट है उससे स्वपद के द्वारा द्विरेफ ग्राह्य होता है। यहाँ पर स्व पद द्विरेफ होता है जिस बोध्य अर्थ है दो रेफ

ध्यान दें:

(पंख) युक्त, उसका मधुकर के साथ रेफद्वयघटितपदवाच्यत्वरूप परम्परा सम्बन्ध होता है। जिस प्रकार से रेफद्वयघटितपद भ्रमर पद होता है उसका वाच्य मधुकर होता है। इसलिए प्रकृत में रेफद्वयघटितपदवाच्यत्वरूपपरम्परा सम्बन्धरूपा लक्षणा है। इसलिए यहाँ पर लक्षित लक्षणा है, यहाँ पर केवल लक्षणा द्विरेफपद वाच्य द्विरेफ का मधुकर के साथ साक्षात् सम्बन्ध के असम्भव होने से सम्भव नहीं है।

जहल्लक्षणा

जहाँ पर शक्य का अनन्तर्भाव्य तथा अर्थान्तर की प्रतीति हो वहाँ पर जहत् लक्षणा होती है। जिस लक्षणा के द्वारा अपने शक्य अर्थ का त्याग किया जाता है वह जहत् लक्षणा कहलाती है। अर्थात् जहाँ पर केवल लक्ष्यार्थमात्र की प्रतीति होती है तथा शक्यार्थ का सर्वथा परित्याग होता है वहां जहत् लक्षणा होती है, इस प्रकार से व्यवहार किया जाता है। जिससे 'प्रकृतपदाशक्यमात्रविषयकबोधानुकूला लक्षणा जहल्लक्षणा' इस प्रकार का लक्षण किया जाता है। जैसे 'जहर खाओ' इस वाक्य से भले ही विषकर्मकभोजन रूपी अर्थ का बोध होता है। लेकिन इस वाक्य का शत्रुगृहाधिकरणकभोजन भावरूप में लक्षणा होती है। वह है प्रकृत पदों का अशक्य अर्थ होता है। इसलिए यहाँ पर प्रकृतपदाशक्यामात्रविषयकबोधनुकूला लक्षणा है इसलिए यहाँ पर जहत् लक्षणा इस प्रकार का व्यवहार किया जाता है।

अजहत् लक्षणा

जहाँ पर शक्यार्थ के अन्तर्भाव्य में ही अर्थान्तर की प्रतीति होती है वहाँ पर अजहत् लक्षणा होती है। जिसके द्वारा अपना शक्य अर्थ त्यागा नहीं जाता है वह अजहत् लक्षणा होती है। यह ही अजहत् स्वर्था लक्षणा भी कहलाती है। इसे स्वार्थसंवलितपरार्थाभिधायिका अजहत्स्वार्था भी कहते हैं। जैसे शुक्ल(सफेद) वस्त्र यहाँ पर शुक्लशब्द के शुक्लवत् द्रव्यमें लक्षणा की जाती है। इस प्रकार से स्व पद यहाँ पर शुक्लशब्द है, वह शक्य शुक्लरूपात्मक गुणवृत्तिरूपत्व है, वह अन्य शुक्लगुणाश्रय पट है। वह दोनों के बोध के अनुकूल शुक्लत्व निष्ठा लक्षणा में है। जैसे कुन्तों को प्रविष्ट करवाओ, यहाँ पर कुन्तशब्द से कुन्तास्त्र विशिष्ट पुरुषों में लक्षणा होती है। उससे यहाँ पर स्व शब्द, कुन्तशब्द है तथा उसका शक्यार्थ कुन्तास्त्र विशेष है। उस अर्थ से अन्तर्भाव्य अर्थान्तर पुरुष का बोध होता है इसलिए यहाँ पर अजहत् लक्षणा है। इसी प्रकार यष्टि को प्रवेश करवाओ, छत्रिय जाते हैं, कौओं से दही की रक्षा करो इत्यादि में भी समझना चाहिए। लक्ष्यता अवच्छेदकरूप से लक्ष्य तथा शक्य दोंनो के अर्थ का बोध करवाने वाली लक्षणा अजहत् लक्षणा होती है। जैसे कौओं से दही की रक्षा करो। यहाँ पर कौआ इस पद की दही उपघातक में लक्षणा है। यहाँ पर लक्ष्य दही के उपघातक हैं। लक्ष्यता अवच्छेदकत्व ही दही उपघातत्व है। शक्य काक के काकत्व का बोध नहीं करके लक्ष्यता अवच्छेदकरूपे से दही उपाघातकत्व से शक्य काक को बोध होता है। और भी लक्ष्यता अवच्छेदक रूप से शक्यभिन्न अन्य दही उपघातकों का भी बोध उत्पन्न होता है। भले ही काक में काकत्व है फिर भी काक से दही की रक्षा न करे अपितु काक दही का उपघातकत्व है इन कौओं से दही की रक्षा करनी चाहिए।

जहदजहल्लक्षणा

जहाँ पर विशिष्ट वाचक शब्द अपने अर्थ के एकदेश को छोड़कर एकदेश में रहते हैं वहाँ जहत् अजहत् लक्षणा होती है। जैसा यह, वह देवदत्त है। यहाँ पर लक्षणा के पूर्व वाक्य की स्थिति जानना चाहिए। तब कहते है कि इस प्रकार के वाक्य का प्रयोग कब होता है, जब किसी व्यक्ति ने वाराणसी में देवदत्त नाम का काई पुरुष देखा और फिर वह उसको ही अयोध्या में देखता है तब कहता है कि यह वह देवदत्त है। यहाँ पर वह पद से वाराणसी में स्थित देवदत्त का ग्रहण करना चाहिए तथा यह पद से अयोध्या में

ध्यान दें:

स्थित देवदत् का ग्रहण करना चाहिए। इसलिए यहाँ पर वह पद का अर्थ वाराणसी स्थित देवदत्त है तथा यह पद का अर्थ अयोध्या स्थित देवदत्त है। सोऽयं देवदत्तः, यहाँ पर सः पद भी प्रथमान्त है तथा यह पद भी प्रथमान्त है। दोनों पदों में समान विभक्ति होने के कारण समानविभक्ति पदों के उपस्थापित अर्थ में अभेद होता है, इस प्रकार का नियम है। जैसे नीलः घटः इत्यादि में होता है वैसा ही अभेदान्वय यहाँ भी होना चाहिए। लेकिन प्रकृत में तो वाराणसी में स्थित देवदत्त का अयोध्या में स्थित देवदत्त से अभेद सम्भव नहीं होता है, इस शङ्का के समाधान के लिए यहाँ पर लक्षणा स्वीकार की जाती है। जिसे तत् पद की केवल देवदत्त में लक्षणा तथा इदं पद की भी केवल देवदत्त में लक्षणा की जाती है। जिससे सः तथा अयं इन दोनों पदों का अर्थ देवदत्त होता है। यहाँ पर जो लक्षणा है वह जहत् अजहत् लक्षणा है क्योकि प्रकृत में विशिष्ट वाचक शब्द तत तथा इदम् है। यहाँ पर लक्षणा के द्वारा तत् पद वाराणसी रूप अर्थ को छोडकर विशेष्य अंश देवदत्त का ही बोध कराता है। इसी प्रकार इदं पद भी विशेषणांशभूत अयोध्यायास्थ रूप को छोडकर विशेष्यांश देवदत्त का ही बोध कराता है। इस प्रकार दोनों पद अपने अर्थ के एकदेश को छोड़कर एकदेश में होने से यहाँ पर जहत् अजहत् लक्षणा होती है।

वेदान्त पारिभाषाकार का मत

कौओं से दही की रक्षा करो यहाँ पर वक्ता के द्वारा कहे गये दही उपघातकों से दही की रक्षा करो इस प्रकार से श्रोता समझता है। नहीं तो केवल कौओ से दही की रक्षा करो तथा बिल्ली आदि से रक्षा मत करो। इसलिए यहाँ पर काक पद की काक तथा काक से भिन्न साधारण दही उपघातकों में लक्षणा जाननी चाहिए। और वह दही उपघातकत्व से शक्यभूत कौए ग्रहण से शक्य अर्थ के अपरित्याग से जहत् लक्षणा नहीं होती है। तथा यदि काक पद के शक्य काकत्व का परित्याग करें तो अजहत् लक्षणा भी नहीं है। इसलिए यहाँ पर अजहत् लक्षणा है।

9.3) शाब्दबोध में सहकारिकारण

जल से सींचता है, इस वाक्य से बोध होता है लेकिन आग के द्वारा सींचता है, इस वाक्य से बोध नहीं होता है। वहाँ क्या कारण है? तब कहते है कि जैसे बोध के प्रति करण वाक्य होता है तथा कारण वृत्तिज्ञान होता है। उसी प्रकार बोध के प्रति कुछ सहकारिकारण भी होते हैं। वे हैं आकाङ्क्षा, योग्यता, आसत्ति तथा तात्पर्य ज्ञान इस प्रकार से चार प्रकार के होते हैं। यहाँ पर क्रम से इनके स्वरूप का प्रतिपादन कर रहे हैं।

9.3.1) आकाङ्क्षा

वहाँ पर पदार्थो की परस्पर जिज्ञासा के विषय में आकाङ्क्षा होती है। अर्थात् एकपदार्थज्ञान जन्यापरपदार्थज्ञानेच्छाविषयत्वयोग्यत्वम् (एक पदार्थ ज्ञान जन्य अपरपदार्थ के ज्ञान की इच्छा तथा अविषययोग्यत्व आकांक्षा का लक्षण है। जैसे कि ददाति (देता है) इस प्रकार से कहने पर कौन देता है, कैसे देता है, किसको देता है, किससे देता है, किसमें देता है, तत्तत्कारक विषयों में जिज्ञासा उत्पन्न होती है। ऐसे ही देवदत्त ऐसा कहकर क्या करता हैं यहाँ पर क्रिया विषयी जिज्ञासा होती है। इस प्रकार से क्रिया के ज्ञान के द्वारा कारक की तथा कारक के ज्ञान के द्वारा क्रिया की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। उससे क्रिया तथा कारक के मध्य आकाङ्क्षा उत्पन्न होती है। ऐसे ही जैसे 'राजा का' इस प्रकार कहने पर कौन तथा 'पुरुष' इस प्रकार कहने पर किसका इस प्रकार की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। इससे राजा तथा पुरुष इन दोनों पदों में परस्पर आकाङ्क्षा होती है। इसी प्रकार अन्य जगह भी समझना चाहिए। आकाङ्क्षा के सत्व होने पर शाब्दबोध होता है। जहाँ पर आकाङ्क्षा नहीं होती है वहाँ पर शब्द बोध भी नहीं होता है।

ध्यान दें:

9.3.2) योग्यता

तात्पर्य विषय संसर्ग का अबाध योग्यता कहलाती है। यहाँ पर तात्पर्य विषय इस पद का अर्थ है वक्ता की इच्छा का विषय। संसर्ग इसका अर्थ है एक पदार्थ में अपर पदार्थ सम्बन्ध तथा अबाध इसका अर्थ है बाध का अभाव। इस प्रकार लक्षणा का अर्थ होता है वक्ता कि इच्छा के विषयीभूत जो एक पदार्थ में अपर पदार्थ के संबंध के बाध का अभाव होता है। यह ही योग्यता कहलाती है। जैसे जल के द्वारा सींचा जाता है यह वाक्य है। यहाँ पर जल पद का अर्थ जल है तथा सिञ्च धातु का अर्थ है सींचना। वहाँ पर जल के सींचने में सेचन करणत्व सम्बन्ध से अन्वय होता है। धात्वर्थ का अन्वय करने पर अन्वय होता है। उस वाक्य का जलकरणसेचन अनुकूलकृतिमान यह अर्थ होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जल के सींचने से करणत्व सम्बन्ध के द्वारा अन्वय होता है। उससे प्रकृत वाक्य में वक्ता की इच्छा के विषयभूत सम्बन्ध करणत्व सम्बन्ध होता है। उसका कोई बाध नहीं होता है। कारण यह है की सेचन का करण द्रव द्रव्य पदार्थ ही होता है। तथा जल द्रव्य ही होता है। उससे जल सींचता है इत्यादि में तात्पर्य विषय संसर्ग बाध के सत्व से योग्यता है। इसलिए यह वाक्य योग्य कहलता है। तथा योग्यवश ही प्रकृत से बोध होता है लेकिन आग सींचती है यह वाक्य किसी के द्वारा कहा गया। यहाँ पर वह्नि पद का अर्थ आग होता है तथा सिञ्च धातु का अर्थ सींचना होता है। वहाँ वह्नि के सींचने में करणत्वसबन्ध से अन्वय होता है। धात्वर्थ का तिबन्त अर्थ करने पर अन्वय होता है। उसके द्वारा इस वाक्य का अर्थ वह्निकरणक सेचनानुकूलकृतिमान होता है। उससे प्रकृत वाक्य में वक्ता की इच्छा के विषयभूत सम्बन्ध करणत्व सम्बन्ध के रूप में आता है। और उसका बाध भी होता है। कारण यह है कि सेचन का करण द्रव द्रव्य पदार्थ ही होता है। वह्नि द्रव द्रव्य नहीं होती है। उससे यहाँ योग्याता नहीं होती है। इस प्रकार से यह वाक्य योग्य नहीं हैं अपितु अयोग्य है। इसलिए यहाँ पर योग्यता रूप कारण के अभाव से वह्नि के द्वारा सींचता है। इस प्रकार के वाक्य का बोध नहीं होता है।

9.3.3) आसत्ति

अव्यवधान से पदजन्यपदार्थ की उपस्थिति आसत्ति कहलाती है।

यहाँ पर यह भाव है कि शब्द बोध में पदजन्य पदार्थ की उपस्थिति कारण होती है। वहाँ जिन दोनों पदार्थों के द्वारा परस्पर अन्वय इष्ट होता है। उन दोनों पदार्थों की अव्यवधान के द्वारा उपस्थिति आसत्ति कहलाती है। तब प्रश्न करते हैं की पदार्थों अव्यवधान से उपस्थिति कब होती है। तथा कब व्यवधान से होती है। तब कहते हैं कि यहाँ पर व्यवधान को पदान्तर करके कालकृत का ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् जिन दोनों पदार्थों के मध्ये अन्वय इष्ट होता है तद्वाचक दो पदों के बीच में यदि पदान्तरकृत तथा कालकृत व्यवधान नहीं होता है तब वहाँ पदों के स्वार्थ की अव्यधान से उपस्थिति नहीं होती है। उससे वहाँ आसत्ति रुकती है तथा उससे शाब्दबोध होता है। जैस पर्वत आग युक्त है इत्यादि में गिरि पदार्थ तथा वह्निमान पदार्थ इन दोनों के बीज में परस्पर अन्वय इष्ट होता है तथा तद्वाचक पद गिरि तथा वह्नि के बीच में किसी अन्य पदान्तर अथवा काल का व्यवधान नहीं होता है। इसलिए पूर्व गिरिपद से पर्वत की उपस्थिति होती है तथा उसके व्यधान से ही अग्रिम पद से अग्नियुक्त अर्थ की उपस्थिति होती है। इसलिए यहाँ पर आसत्ति है। उसके द्वारा पर्वत आगयुक्त है इस वाक्य से अग्निमान से अभिन्न पर्वत है इस प्रकार का बोध होता है। इसी प्रकार से देवदत्त के द्वारा खाया गया, ऐसा कहने पर देवदत्त पदार्थ तथा भोजन पदार्थ में परस्पर अन्वय इष्ट होता है तथा तद्वाचक पद देवदत् तथा भुक्त पद के बीच में किसी अन्यपदान्तर का तथा काल का व्यवधान नहीं होता है। इसलिए पूर्वदेवदत्त पद से देवदत्त रूप अर्थ की उपस्थिति होती है। तथा उसके व्यवधान के द्वारा ही 'खाया गया ' भोजनरूप अर्थ की भी उपस्थिति होती है। उससे यहाँ आसत्ति करके इस वाक्य का देवदत्त कर्तृक भोजन यह बोध होता है।

ध्यान दें:

लेकिन जहाँ जिन दोनों पदार्थों में परस्पर अन्वय इष्ट होता है उनके वाचक पदों के बीच में पदान्तर कृत तथा कालकृत यदि व्यधान होता है तो वहाँ आसत्ति नहीं होती है। तथा आसत्ति के अभाव में वहाँ शब्द बोध भी नहीं होता है। जैसे किसी व्यक्ति के द्वारा यदि यह कहा जाए की (गिरिः भुक्तम् अग्निमान् देवदत्तेन इत्युक्तम्) पर्वत खाता है तथा देवदत्त अग्नि से युक्त है। यहाँ पर गिरि पद से पर्वत के अर्थ की उपस्थिति होती है तथा अग्नि पद से अग्निमान् अर्थ की उपस्थिति होती है, देवदत्त पद से देवदत के अर्थ की उपस्थिति होती है और तृतीया विभक्ति के कारण करण अर्थ की उपस्थिति होती है। इस प्रकार की उपस्थिति होने पर गिरिपद के अर्थ का अग्निवान पद के साथ अर्थ इष्ट है लेकिन तद्वाचक गिरिपद तथा अग्निपद के बीच में भुक्त पद के व्यवधान से गिरिपदार्थ तथा अग्निपदार्थ में अव्यवधान से उपस्थिति नहीं होती है। इसलिए इस स्थल में आसत्ति नहीं होने से शब्द बोध नहीं होता है। इसी प्रकार भुक्त पदार्थ का देवदत्त पदार्थ के साथ अन्वय इष्ट है। लेकिन तद्वाचक देवदत्त तथा भुक्तपद के बीच में अग्निपद के व्यवधान से भुक्तपदार्थ तथा देवदत्त पदार्थ में अव्यवधान से उपस्थिति नहीं होती है। इसलिए यहाँ पर भी आसत्ति नहीं होने के कारण शब्द बोध नहीं हो सकता है। उसी प्रकार जहाँ पर किसी व्यक्ति के द्वारा गिरि पद कह दिया जाए तथा फिर एक घण्टे बाद में यदि अग्नि पद कहा जाए तो वहाँ पर गिरि तथा अग्निपद के बीच में कालकृत व्यवधान के होने से दोनों पदों के बीच में कालकृत अव्यवधान की उपस्थिति नहीं होती है। इसलिए उस प्रकार के स्थलों में भी शब्द बोध नहीं होता है।

9.3.4) तात्पर्य

तात्पर्य भी शब्दजन्य बोध में सहकारी कारण होता है। वक्ता के तात्पर्य को जानकर के श्रोता भी यह निश्चय कर लेता है कि इस वाक्य का यह अर्थ है तथा इस अर्थ में कोई तात्पर्य नहीं है। इस प्रकार से शब्दजन्यबोध में कारणीभूत तात्पर्य का क्या लक्षण है तो कहते हैं तत्प्रतीतिजननयोग्यत्वं तात्पर्यम्। उस अर्थ की प्रतीति के ज्ञान का जनन योग्यता ही तात्पर्य है। ऐसा कहा जाता है। यहाँ पर अर्थ परक वाक्य ही साधना चाहिए तथा उसके पद से उसके अर्थ का ही ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार से तदर्थानुभवजननस्वरूपयोग्यत्व ही तात्पर्य का लक्षण प्रतिफलित होता है। जैसे घर में घट है (गेहे घटः अस्ति) यहाँ पर गेह शब्द से गेह में सप्तमी विभक्ति वृतित्व तथा घट शब्द से घट की उपस्थिति, गेह तथा घट के संसर्ग से आधार आधेय भाव का गेहवृत्तिघट इस प्रकार के आकार का बोध होता है। इसलिए घर में घट है इस वाक्य का गेहवृत्तिघट इस प्रकार के आकार पर अर्थ साधन करना चाहिए। उस प्रकार के अर्थ की जो प्रतीति होती है उसकी जनन योग्यता इस वाक्य में होती है क्योंकि यह वाक्य गेहवृत्तिघट इस प्रकार आकार के बोध को जन्म देता है। उससे गेहवृत्तिघट इस प्रकार के आकार वाला अनुभव जननस्वरूप योग्य गेह घटसंसर्गजनन स्वरूप योग्य होते हैं। वह ही तात्पर्य होता है। इसलिए घर में घट है (गेहे घटः) इस वाक्य का गेहवृत्तिघट इस रूप में तात्पर्य होता है। तथा ऐसा व्यवहार भी होता है।

(गेहे घटः) घर में घट है इस वाक्य से गेहवृत्ति रूप पट इस प्रकार के आकार का बोध नहीं होता है। इसलिए यह वाक्य गेहवृत्तिपट्ट इस प्रकार के आकार का अनुभव जनन स्वरूप योग्य नहीं होता है। किस प्रकार से नहीं होता है तब कहते हैं इस वाक्य का गेहवृत्तिपट्ट इस अर्थ में तात्पर्य नहीं होता है। क्योंकि यदि घर में घट है इस वाक्य का गेहवृत्तिपट इस अर्थ में तात्पर्य होता है तो यह वाक्य गेहवृत्तिपट इस प्रकार के आकार के अनुभवजननस्वरूप योग्य भी होना चाहिए। उस के द्वारा इस वाक्य का गेहवृत्तिपट इस प्रकार के आकार का बोध होता है। लेकिन गेहे घटः इस वाक्य से गेहवृत्तिरूप पट में तात्पर्य नहीं होता है। इसलिए वैसा बोध नहीं होता है।

तत्प्रतीति जनन योग्यत्व ही तात्पर्य का लक्षण है सत्य होने पर भी जब कोई पुरुष भोजन के समय में लवण लाने की इच्छा से 'सैन्धवम् आनय' यह वाक्य कहा है। तब 'सैन्धवम् आनय' यह वाक्य लवण

ध्यान दें:

लाने के विषय में तो बोधपरक है लेकिन अश्व (घोड़े) लाने के विषय में भी होने योग्य है। उसके द्वारा लवण लाने की इच्छा के द्वारा उच्चारित सैन्धवम् आनय वाक्य से तो अश्वम् आनय इस प्रकार के अर्थ की भी प्रतीति भी होती है। लेकिन भोजन काल में अश्वानयनविषयक बोध इष्ट नहीं है।

इसी प्रकार किसी पुरुष ने यात्रा काल के समय अश्व को लाने की इच्छा से सैन्धवम् आनय यह वाक्य कहा। तब सैन्धवम् आनय पूर्ववत् यह वाक्य अश्व आनयन विषयक बोध परक होता हुआ नमक लाने के विषय में भी बोध परक होता है। जिससे अश्व लाने की इच्छा से उच्चारित वाक्य की नमक लाओ इस इस प्रकार के अर्थ की भी प्रतीति होती है, लेकिन यात्रा के समय नमक लाने वाला विषय बोध इष्ट नहीं है। तो तत्प्रतीतिजननयोग्यत्व तात्पर्यलक्षण दोषयुक्त दिखाई देता है। इसलिए दर्शित दोष के निवारण के लिए वेदान्तियों के द्वारा तात्पर्य का लक्षण परिष्कृत किया गया है। परिष्कृत लक्षण का स्वरूप है तत्प्रतीतिजननयोग्यत्वे सति तदन्यप्रतीतीच्छयानुच्चरितत्वं तात्पर्यत्वमिति। तत्वप्रतीतिजननयोग्यत्व होने पर तदन्यप्रतीत इच्छा के द्वारा जो अनुच्चरित तत्व होता है वह तात्पर्य कहलाता है। इस प्रकार से भोजन के समय में प्रयुक्त शब्द 'सैन्धवं आनय' यह वाक्य नमक लाने वाले अर्थ की इच्छा से बोला गया, न की अश्व को लाओ इस इच्छा से बोला गया। इसलिए भोजन के समय में प्रयुक्त सैन्धवम् आनय यह वाक्य लवण आनय इस प्रकार की प्रतीतिजनन योग्यत्व वाला है, और नमक लाओ इससे भिन्न अश्व को लाओ इस प्रकार की भी प्रतीति कराता है। इसलिए भोजन के समय में सैन्धवम् आनय इस वाक्य से लवण आनयन विषयक ही बोध होता है। न की अश्व आनयन विषय बोध। इसी प्रकार यात्रा काल के समय में प्रयुक्त सैन्धवम् आनय, यह वाक्य अश्वम् आनय, इस प्रकार के अर्थ समझने वाली इच्छा से उच्चरित किया गया था न की नमक लाने की इच्छा से। इसलिए यात्रा काल में सैन्धवम् आनय, इस वाक्य से अश्व आनयन विषयक ही बोध होता है। न की लवण आनयन विषय बोध। इस प्रकार से यह यात्रा काल के समय सैन्धवम् आनय यह वाक्य अश्व को लाने के विषय में ही बोध को उत्पन्न करता है न की लवण को लाने के विषय में।

नैयायिक मत खण्डन

नैयायिक लोग तत्प्रतीति इच्छा के द्वारा उच्चरितत्व को तात्पर्य कहते हैं। उसका अर्थ यह है कि वक्ता अन्य जगह स्वबोध सदृश अन्यबोध की उत्पत्ति के लिए इन वाक्यों से यह अर्थ जानना चाहिए इस कारिका के द्वारा इच्छा से वाक्य का उच्चारण करता है। वहाँ पर वाक्य की एतद् अर्थ प्रतीति होने वाली इच्छा के द्वारा उच्चारण से जो श्रोता की तत्प्रतीति इच्छा के द्वारा उच्चरित तत्व का अवधारण होता है, उस प्रकार की तत्प्रतीति इच्छा के द्वारा उच्चरित तत्व ही तात्पर्य कहलाता है।

नैयायिकों के इस लक्षण में दोष है। वो ये हैं कि जो वेदार्थ को नहीं जानता है, लेकिन वेद वाक्यों का उच्चारण करता है तब यदि श्रोता वेदार्थ को समझनें में अधिकारी होता है तो उसको अर्थ का बोध तो होता ही है। यहाँ पर वक्ता की इच्छा नहीं है। वह तो अर्थ को भी नहीं जानता है, इसलिए कहाँ से उसे उच्चारित वाक्य के अर्थ बोध की इच्छा उत्पन्न होगी। उसके द्वारा वहाँ पर तत्प्रतीति इच्छा के द्वारा उच्चरितत्व को तात्पर्य का लक्षण स्वीकार करें तो श्रोता को उस वाक्य से अर्थ बोध नहीं होना चाहिए। लेकिन उससे तो अर्थ बोध होता है। इसलिए तत्प्रतीति इच्छा के द्वारा उच्चरित तत्व तात्पर्य का लक्षण नहीं है। वहाँ पर नैयायिक अपने पक्ष को दृढ़ करते हुए कहते हैं कि वक्ता अर्थ जानता है या नहीं यह तो श्रोता नहीं जानते है। कुछ श्रोता भ्रमवश तात्पर्य को ग्रहण करते हैं। इस प्रकार से तात्पर्य के ज्ञान से शाब्दबोध सम्भव होता है। इसलिए यह दोष नहीं है। तब सिद्धान्ती जन कहते हैं कि जब वक्ता जानता है या नहीं यह बात श्रोता नहीं जानता है तो वहाँ पर तात्पर्य के भ्रम से शब्द बोध हो। फिर भी यदि वक्ता अर्थ नहीं जानता है तो श्रोता निश्चयपूर्वक जानता है कि उस स्थल में क्या करना चाहिए। वक्ता

ध्यान दें:

के अर्थ ज्ञान शून्यत्व के अवधारित होने के कारण श्रोता को तात्पर्यभ्रम होना सम्भव नहीं है। भले ही वक्ता अर्थज्ञानशून्य है यह ज्ञान तात्पर्य भ्रम के विरुद्ध है।

अब नैयायिक अपने पक्ष का पुन: स्थापन करते हुए कहते हैं कि वक्ता अर्थ नहीं भी जाने लेकिन वेद के किस वाक्य से क्या अर्थ समझना चाहिए इस प्रकार से ईश्वर का तो तात्पर्य होता ही है। इसलिए उस प्रकार के तात्पर्य ज्ञान के द्वारा शाब्धबोध होना चाहिए। तब सिद्धान्ती कहता है कि जो पूर्वमीमांसक ईश्वर को नहीं समझते है लेकिन वे वेदवाक्यों को सुनते हैं तो व्युत्पन्नों को शाब्दबोध होता ही है। इसलिए यह कैसे भी सिद्ध नहीं हो सकता है।

9.4) आगम भेद

वेदान्तशास्त्र में आगमप्रमाण के दो भेदों का वर्णन हैं पौरुषेय तथा अपौरुषेय। वहाँ पौरुषेय शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ होता है, पुरुष के द्वारा किया गया पौरुषेय कहलाता है। उससे भिन्न अपौरुषेय कहलाता है। इसलिए रामायण महाभारत आदि ग्रन्थ वाल्मीकि से लेकर पुरुषों के द्वारा किये गये है इसलिए ये पौरुषेय कहलाते हैं। लेकिन वेदों के विषय में शास्त्रज्ञों में मतभेद है। उस विषय में मिमांसक कहते हैं कि वेद नित्य हैं तथा उनका रचयिता कोई भी नहीं है इसलिए वेद किसी भी पुरुष के द्वारा किये गये नहीं हैं। इसलिए वेद अपौरुषेय है। नैयायिक कहते हैं की वेद ईश्वर के द्वारा बनाये गये है। इसलिए वेद पौरुषेय है। वेदान्ति लोग कहते हैं की वेद परमेश्वर पुरुष के द्वारा ही बनाये गये हैं फिर भी वे अपौरुषेय हैं। लेकिन यदि वेद पुरुष के द्वारा रचे गये है तो पुरुष के द्वारा जो किया जाए वह तो पौरुषेय कहलता है फिर वेद किस प्रकार से अपौरुषेय हुए, इस प्रकार का प्रश्न उत्पन्न होता है। तब वेदान्ति कहते हैं पुरुष के द्वारा किया गया पौरुषेय तथा उससे भिन्न अपौरुषेय नहीं होता है। अपितु वेदान्त शास्त्र में पौरुषेय की तथा अपौरुषेय की भिन्न ही परिभाषा है। जिसके द्वारा वेदों को पौरुषेय तथा वेदभिन्नों का अपौरुषेय सिद्ध होता है।

वो इस प्रकार से है

पौरुषेय

पौरुषेय किसे कहते हैं? तो कहते हैं कि सजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणविषय पौरुषेय: अर्थात् जो उच्चारण सजातीय उच्चारण कहलाता है तथा वह अपने समान अनुपूर्वी उच्चारण की अपेक्षा नहीं करता है वह सजातीय उच्चारण अनपेक्ष उच्चारण होता है उस प्रकार के उच्चारण का जो विषय है वह पौरुषेय कहलाता है। सजातीय से यहाँ पर अनुपूर्वी का ग्रहण करना चाहिए। तथा जिस वाक्य का समानानुपूर्वी वाक्य अन्तरोच्चारण निरपेक्ष उच्चारण किया जाता है वह पौरुषेय कहलाता है। जैसे महाभारत आदि का समानुपूर्वीवाक्यन्तरोच्चारण निरपेक्ष होता है। कारण यह है कि महाभारत के समान अनुपूर्वी द्वितीय महाभारत नहीं है। और अपने समान अनुपूर्वी सापेक्ष उच्चारण में फल भी नहीं है। उससे महाभारत आदि का उच्चारण स्वसमान अनुपूर्वी वाक्यन्तर उच्चारण निरपेक्ष ही किया जाता है। इसी प्रकार रामायण आदि का भी। इसलिए रामायण, महाभारत, अष्टादश पुराण तथा कालिदास प्रणीत काव्य पौरुषेय है वेद से भिन्न वेद वाङ्मयम भी पौरुषेय है।

मूलभाव

व्यास वाल्मीकि आदि ऋषि हर सृष्टि में भिन्न-भिन्न महाभारत तथा रामायणादि की रचना करते हैं। उससे इन ग्रन्थों की अनुपूर्वी हर युग में भिन्न-भिन्न होती है। इसलिए व्यास ने पहले की सृष्टि में

ध्यान दें:

जो महाभारत की रचना की थी उससे भिन्न महाभारत की रचना दूसरी सृष्टि में की है। इसी प्रकार अन्यों को भी समझना चाहिए। वहाँ से महाभारत आदि का उच्चारण स्वसमानानुपूर्वीवाक्यान्तरोच्चारणनिरपेक्ष ही होता है। उससे ये ग्रन्थ पौरुषेय कहलाते हैं, लेकिन ये ग्रन्थ आप्तपुरुषों के द्वार रचे गये है। इसलिए ये सभी प्रमाणभूत ग्रन्थ होते है।

अपौरुषेय

अपौरुषेय किसे कहते हैं? तब कहते हैं कि जो वाक्य नियम के द्वारा समान आनुपूर्वीसमानानुपूर्वीवाक्यान्तरोच्चारणसापेक्ष ही उच्चारित होता है वह अपौरुषेय कहलाता है। जैसे वेदवाक्य। कारण परमेश्वर पूर्वसर्गसिद्ध वेद समान आनुपूर्वीक वेद दूसरे सर्ग में भी रचता है। न की पूर्वसर्गसिद्धवेदभिन्न अनुपूर्वी वेद को। उससे प्रतिसर्ग में वेद की अनुपूर्वी भिन्न नहीं होती है। और वह तो समान ही रहती है। इसलिए पूर्वसर्गसिद्ध के समान अनुपूर्वी वेदान्तर के सत्व से उसी के समान अनुपूर्वी वेद का दूसरे सर्ग (युग) में परमेश्वर फिर से उच्चारण करता है, उससे वेदों का समान अनुपूर्वी वाक्यन्तर उच्चारण सापेक्ष उच्चारण होता है। इसलिए वेद अपौरुषेय है।

मूल भाव

परमेश्वर के द्वारा सृष्टि के निर्माणकाल में वेद की भी रचना की गई, लेकिन उन्होंने नवीन वेद की रचना नहीं की अपितु पूर्वसिद्ध वेद की ही रचना की अर्थात् जो आनुपूर्वीक वेदवाक्य पहले था उसके समान आनुपूर्वीक की ही रचना की। इसलिए वेदों की रचना के विषय में कहा भी गया हैं कि जैसे विधाता में पूर्व कल्पना की थी। जैसे पहले थे उनकी कल्पना की गई न की नवीन की। इसलिए वेदान्त परिभाषा में भी कहा गया हैं कि

'तथा च सर्गाद्यकाले परमेश्वर: पूर्वसिद्धवेदानुपूर्वीसमानानुपूर्वीकं वेदं रचितवान्, न तु तद्विजातीयमिति न सजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणविषयत्वं पौरुषेयत्वम्। भारतादीनां तु सजातीयोच्चारणानपेक्ष्यैवोच्चारणमिति तेषां पौरुषेयत्वम्।'

अर्थात् सृष्टि के आदिकाल में परमेश्वर ने पूर्वसिद्ध वेदों के अनुपूर्वी के समान अनुपूर्वी वेद की रचना की वह रचना उनसे भिन्न नहीं थी और नहीं सजातीय उच्चारण अनपेक्ष उच्चारणविषयत्व पौरुषेयत्व वाली थी। महाभारत आदि का तो सजातीय उच्चारण अनपेक्ष्य उच्चारण होने से वे पौरुषेय से युक्त होती है। के द्वारा पूर्वक्रमसदृशक्रमवद्वेदराशी के उत्पन्नत्व से इस वाक्य का पूर्वसर्गसिद्धसमानानुपूर्वीवाक्योन्तर सापेक्ष ही उच्चारण होता है। इसलिए वेद अपौरुषेय है।

सर्वज्ञ आदि ईश्वर

पाठगत प्रश्न 9.1

1. वेदान्तमत में कितने प्रमाण होते हैं?
2. शब्द प्रमाण का क्या लक्षण है?
3. वृत्ति का क्या लक्षण होता है?
4. शक्ति किसे कहते हैं?

ध्यान दें:

5. लक्षणा किसे कहते हैं?

6. केवल लक्षणा किसे कहते हैं?

7. जहत् लक्षणा किसे कहते हैं?

8. अजहत् लक्षणा किसे कहते हैं?

9. जहत् अजहत् लक्षणा किसे कहते हैं?

10. आकाङ्क्षा किसे कहते हैं?

11. आसत्ति किसे कहते हैं?

12. तात्पर्य का क्या लक्षण है?

13. पौरुषेयत्व किसे कहते हैं?

14. अपौरुषेयत्व किसे कहते हैं?

पाठ सार

इस पाठ में शब्द प्रमाण का निरुपण किया गया है। उसमें शाब्दबोध के करण को ही शब्दप्रमाण कहते हैं तथा शब्द से उत्पन्न बोध ही शाब्धबोध इस प्रकार से जाना जाता है तथा शब्दजन्य बोध के प्रति वृत्ति ज्ञान कारण होता है। वृत्ति वेदान्त शास्त्र में शक्तिलक्षण भेद से दो प्रकार की होती है। वहाँ पर पदार्थों में जो मुख्य वृत्ति होती है वह शक्ति नाम से कही जाती है। स्वबोध्यसम्बन्ध लक्षणा होती है। उसके बाद लक्षणा के भेदों का निरूपण किया गया। उसके बाद यहाँ पर शाब्दबोध के प्रति सहकारिकारणों का निरूपण किया गया। वे चार होते हैं। आकाङ्क्षा योग्यता, आसत्ति तथा तात्पर्यज्ञान। उसके बाद आगम के भेदो में पौरूषेय तथा अपौरुषेय का वर्णन किया गया है।

आपने क्या सीखा

- अद्वैत वेदान्त के मत में शब्द प्रमाण,
- शब्द प्रमा
- वृत्ति को जानकर शक्ति के लक्षण तथा भेदों को जाना,
- लक्षणा के बीज को जाना,
- शाब्दबोध में क्या सहकारी होता है यह जाना,
- वेदान्तमत में वेद के नपौरूषेयत्व तथा अपौरूषयेत्व को जाना।

ध्यान दें:

पाठान्त प्रश्न

1. शब्द प्रमाण के लक्षण का प्रतिपादन कीजिए।
2. शक्ति के स्वरूप का प्रतिपादन कीजिए।
3. लक्षणा के स्वरूप को लिखिए।
4. लक्षणा के भेदों को लिखिए।
5. लक्षित लक्षणा के स्वरूप का उदाहरण सहित प्रतिपादन कीजिए।
6. तात्पर्य के स्वरूप का प्रतिपादन कीजिए।
7. पौरुषेयत्व तथा अपौरुषेयत्व का वर्णन कीजिए।
8. आकाङ्क्षा के स्वरूप का प्रतिपादन कीजिए।
9. आसत्ति के स्वरूप का प्रतिपादन कीजिए।
10. जहत् लक्षणा के स्वरूप का प्रतिपादन कीजिए।
11. अजहत् लक्षणा के स्वरूप का प्रतिपादन कीजिए।
12. जहत् अजहत् लक्षणा के स्वरूप को लिखिए।
13. योग्यता के स्वरूप का प्रतिपादन कीजिए।
14. लक्षणा में बीज किस प्रकार होता है? इसका प्रतिपादन कीजिए।
15. अन्वय की उपपत्ति तथा लक्षणा के बीज मत का निराकरण कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 9.1

1. वेदान्तनये षट् प्रमाणानि सन्ति।
2. मानान्तराबाधिततात्पर्यविषयीभूतसंसर्गानुभावकवाक्यत्वं शब्दप्रमाणत्वम्
3. शाब्दबोधानुकूलपदपदार्थसम्बन्धत्व वृतित्व होता है।
4. पदार्थों में जो मुख्य वृत्ति होती है वह शक्ति कहलाती है।
5. स्वबोध्यसम्बन्ध लक्षणा कहलाता है।
6. शक्य का साक्षात् सम्बन्ध केवल लक्षणा होता है।
7. शक्य के अनन्तर्भाव्य में जहाँ पर अर्थान्तर की प्रतीति होती है वहाँ पर जहत् लक्षणा होती है।
8. जहाँ पर शक्यार्थ के अन्तभाव्य अर्थान्तर की प्रतीति होती है वहाँ पर अजहत् लक्षणा होती है।

ध्यान दें:

9. जहाँ पर विशिष्ट वाचक शब्द अपने अर्थ के एक देश को छोड़कर दूसरे देश में रहते है वहाँ जहत् तथा अजहत् लक्षणा होती है।
10. पदार्थों की परस्पर जिज्ञासा विषयत्व आकांक्षा कहलाती है।
11. अव्यवधान के द्वारा पदजन्य पदार्थों की उपस्थिति आसत्ति होती है।
12. तात्पर्यविषय संसर्ग का बोध योग्यता कहलाती है।
13. तत्प्रतीति जननयोग्यत्व होने पर तदन्यप्रतीति की इच्छा के द्वारा उच्चरित तत्व तात्पर्यत्व होता है।
14. सजातीय उच्चारण अनपेक्ष उच्चारण विषय पौरुषेय होता है।
15. समानानुपूर्वीकवाक्यान्तरोच्चारणसापेक्षमेवोच्चार्यते तद् अपौरुषेयम्।